॥ ओ३म् ॥

स्वामी नारायण सम्प्रदाय और मूर्त्तिपूजा

(स्वामी नारायण अक्षरपीठ अहमदाबाद द्वारा प्रकाशित
गुजराती पुस्तक 'सनातन धर्म अभिगम' के
'मूर्त्तिपूजा' प्रकरण की तार्किक समीक्षा)

डॉ० भवानीलाल भारतीय

प्रकाशक
श्री घूडमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास
ब्यानिया पाड़ा, हिण्डौन सिटी (राजस्थान), पिन-३२२२३०

प्रकाशकीय

आर्यसमाज के प्रवर्त्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती जी (१८२५-१८८३ ई०) ने समस्त मानवजाति के ऐक्य एवं सर्वविध कल्याण के लिए ऋग्वेदादि चार मन्त्र संहिताओं को ईश्वर प्रणीत घोषित कर उन्हीं की शिक्षाओं के अनुसार अपने सत्यार्थ प्रकाश आदि ग्रन्थों की रचना की है । स्वामी जी मानव ऐक्य के पुरोधा थे । सत्य और न्याय के आधार पर मानव ऐक्य के स्वप्न को साकार करने के लिए वे आजीवन पुरुषार्थ करते रहे और इसी कार्य को करते हुए उन्होंने अपना बलिदान दिया । स्वामी जी ने वेद और ऋषि-मुनियों द्वारा प्रणीत वेदानुकूल ग्रन्थों की सार्वभौम उदात्त शिक्षाओं के वैश्विक प्रचार-प्रसार के लिए आर्यसमाज की स्थापना की ।

स्वामी जी की दृष्टि में विभिन्न मत-पन्थ-सम्प्रदायों के कारण सत्य सनातन वेद धर्म की महती हानि हुई है । अतः स्वामी जी ने धर्म या अध्यात्म के नाम पर खड़े किए गए व्यक्ति केन्द्रित मत-पन्थ-सम्प्रदायों की वेद-विरुद्ध मान्यताओं तथा क्रियाकलापों का खण्डन कर इन मत-पन्थ-सम्प्रदायों को समूल नष्ट करने का अभियान चलाया । इसी अभियान के अन्तर्गत उन्होंने 'शिक्षापत्रीध्वान्तनिवारण' (अथवा 'स्वामी नारायण मत खण्डन') नामक एक लधु ग्रन्थ लिखा जिसमें गुजरात में पैदा हुए स्वामी नारायण सम्प्रदाय की मूल पुस्तक 'शिक्षापत्री' की प्रमाण पुरस्सर समालोचना की गई है । स्वामी जी ने सत्यार्थ प्रकाश के ११वें समुल्लास में भी स्वामी सहजानन्द (१७८१-१८३० ई०) द्वारा चलाए गए इस सम्प्रदाय की समीक्षा की है ।

आज यह स्वामी नारायण सम्प्रदाय केवल गुजरात में सीमित नहीं रहा है। देश के कई अन्य प्रान्तों, महानगरों में तथा विश्व के अनेक देशों में इस सम्प्रदाय के मन्दिर बन गए हैं। दिल्ली का प्रसिद्ध अक्षरधाम भी इसी सम्प्रदाय का एक प्रमुख केन्द्र है।

इसी सम्प्रदाय के एक विद्वान् ने 'सनातन धर्म अभिगम' नामक अपनी एक गुजराती पुस्तक में मूर्त्तिपूजा का समर्थन करने का प्रयास किया है। आर्यसमाज के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् लेखक प्रो० (डॉ०) भवानीलाल जी भारतीय ने 'सनातन धर्म अभिगम' के मूर्त्तिपूजा प्रकरण की तार्किक समालोचना 'स्वामीनारायण मत और मूर्त्तिपूजा' लेख के रूप में लिखी है, जिसका प्रकाशन 'आर्यजगत्' साप्ताहिक के दो अंकों में (दि० १६-२२ तथा २३-२९ अक्टूबर २०१६) में किया गया है। पाठकों का ज्ञानवर्धन हो सके इस प्रयोजन से डॉ० भारतीय जी के इस लेख को इस पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किया जाता है।

इसी के साथ-साथ डॉ० भारतीय जी प्रणीत 'भारतवर्षीय मत मतान्तर समीक्षा' नामक ग्रन्थ का 'स्वामी नारायण मत खण्डन' विषयक प्रकरण तथा स्वामी दयानन्द द्वारा सत्यार्थ प्रकाश के ११वें समुल्लास में प्रस्तुत स्वामी नारायण मत की समीक्षा विषयक प्रकरण का भी इस पुस्तिका में समावेश किया गया है।

आशा है कि इस पुस्तिका के तटस्थ अध्ययन से पाठकों को स्वामी नारायण मत विषयक यथार्थ जानकारी प्राप्त होगी।

- प्रभाकरदेव आर्य

:: १ ::

स्वामी नारायण मत समीक्षा

- स्वामी दयानन्द सरस्वती

(प्रश्न) स्वामी नारायण का मत कैसा है ?

(उत्तर) 'यादृशी शीतला देवी तादृशो वाहनः खरः' - जैसी गुसाईं जी की धनहरणादि में विचित्र लीला है, वैसी ही स्वामी नारायण की भी है । देखिये ! एक सहजानन्द नामक अयोध्या के समीप एक ग्राम का जन्मा हुआ था । वह ब्रह्मचारी होकर गुजरात, काठियावाड़, कच्छ - भुज आदि देशों में फिरता था । उसने देखा कि यह देश मूर्ख - भोला भाला है, चाहें जैसे इनको अपने मत में झुका लें वैसे ही ये लोग झुक सकते हैं । वहां उसने दो-चार शिष्य बनाये । उनने आपस में सम्मति कर प्रसिद्ध किया कि सहजानन्द नारायण का अवतार और बड़ा सिद्ध है और भक्तों को चतुर्भुज मूर्त्ति धारण कर साक्षात् दर्शन भी देता है ।

एक वार काठियावाड़ में किसी काठी अर्थात् जिसका नाम दादाखाचर गढ़डा का भूमिया (जिमीदार - जमींदार) था । उसको शिष्यों ने कहा कि तुम चतुर्भुज नारायण का दर्शन करना चाहो तो हम सहजानन्द जी से प्रार्थना करें ? उसने कहा बहुत अच्छी बात है । वह भोला आदमी था । एक कोठरी में सहजानन्द ने शिर पर मुकट धारण कर और शंख-चक्र अपने हाथ में ऊपर को धारण किया

और एक दूसरा आदमी उसके पीछे खड़ा रह कर गदा-पद्म अपने हाथ में लेकर सहजानन्द की बगल में से आगे को हाथ निकाल चतुर्भुज के तुल्य बन ठन गये। दादाखाचर से उनके चेलों ने कहा कि एक वार आंख उठा कर देख के फिर आंख मींच लेना और झट इधर को चले आना। जो बहुत देखोगे तो नारायण कोप करेंगे अर्थात् चेलों के मन में तो यह था कि हमारे कपट की परीक्षा न कर लेवे। उसको ले गये। वह सहजानन्द कलाबत्तू और चलकते हुए रेशमी कपड़े धारण किये था। अन्धेरी कोठरी में खड़ा था। उसके चेलों ने एक दम लालटेन से कोठरी की ओर उजाला किया। दादाखाचर ने देखा तो चतुर्भुज मूर्त्ति दीखी, फिर झट दीपक को आड़ में कर दिया। वे सब नीचे गिर, नमस्कार कर दूसरी ओर चले आये और उसी समय बीच में बातें कीं कि तुम्हारा धन्य भाग्य है। अब तुम महाराज के चेले हो जाओ। उसने कहा बहुत अच्छी बात। जब लों फिर के दूसरे स्थान में गये तब लों दूसरे वस्त्र धारण करके सहजानन्द गद्दी पर बैठा मिला। तब चेलों ने कहा कि देखो अब दूसरा स्वरूप धारण करके यहां विराजमान हैं। वह दादाखाचर इनके जाल में फस गया। वहीं से उनके मत की जड़ जमी क्योंकि वह एक बड़ा भूमिया था। वहीं अपनी जड़ जमा ली। पुनः इधर उधर घूमता रहा, सब को उपदेश करता था, बहुतों को साधु भी बनाता था। कभी-कभी किसी साधु की कण्ठ की नाड़ी को मलकर मूर्छित भी कर देता था और सबसे कहता था कि हमने इनको समाधि चढ़ा दी है। ऐसी-ऐसी धूर्त्तता में काठियावाड़ के भोले भाले लोग उसके पेच में फस गये। जब वह मर गया तब उसके चेलों ने बहुत-सा पाखण्ड फैलाया।

इसमें यह दृष्टान्त उचित होगा कि जैसे कोई एक चोरी करता

पकड़ा गया था । न्यायाधीश ने उसको नाक काट डालने का दण्ड किया । जब उसकी नाक काटी गई तब वह धूर्त्त नाचने गाने और हंसने लगा । लोगों ने पूछा कि तू क्यों हंसता है ? उसने कहा - कुछ कहने की बात नहीं है ! लोगों ने पूछा - ऐसी कौन-सी बात है ? उसने कहा - बड़ी भारी आश्चर्य की बात है, हमने ऐसी कभी नहीं देखी । लोगों ने कहा - कहो ! क्या बात है ? उसने कहा कि मेरे सामने साक्षात् चतुर्भुज नारायण खड़े हैं । मैं देख कर बड़ा प्रसन्न होकर नाचता-गाता अपने भाग्य को धन्यवाद देता हूं कि मैं नारायण का साक्षात् दर्शन कर रहा हूं । लोगों ने कहा - हमको दर्शन क्यों नहीं होता ? वह बोला - नाक की आड़ हो रही है । जो नाक कटवा डालो तो नारायण दीखे, नहीं तो नहीं । उनमें से किसी मूर्ख ने कहा कि नाक जाय तो जाय परन्तु नारायण का दर्शन अवश्य करना चाहिये । उसने कहा कि मेरी भी नाक काटो, नारायण को दिखलाओ । उसने उसकी नाक काट कर कान में कहा कि तू भी ऐसा ही कर, नहीं तो मेरा और तेरा उपहास होगा । उसने भी समझा कि अब नाक तो आती नहीं इसलिये ऐसा ही कहना ठीक है । तब तो वह भी वहां उसी के समान नाचने, कूदने, गाने, बजाने, हंसने और कहने लगा कि मुझको भी नारायण दीखता है । वैसे होते-होते एक सहस्र मनुष्य का झुण्ड हो गया और बड़ा कोलाहल मचा और अपने सम्प्रदाय का नाम 'नारायणदर्शी' रक्खा । किसी मूर्ख राजा ने सुना, उनको बुलाया । जब राजा उनके पास गया तब तो वे बहुत नाचने, कूदने, हंसने लगे । तब राजा ने पूछा कि यह क्या बात है ? उन्होंने कहा कि साक्षात् नारायण हमको दीखता है ।

(राजा) हमको क्यों नहीं दीखता ?

(नारायणदर्शी) जब तक नाक है तब तक नहीं दीखेगा और जब नाक कटवा लोगे तब नारायण प्रत्यक्ष दीखेंगे ।

उस राजा ने विचारा कि यह बात ठीक है ।

राजा ने कहा - ज्योतिषी जी ! मुहूर्त्त देखिये । ज्योतिषी जी ने उत्तर दिया - जो हुकम अन्नदाता ! दशमी के दिन प्रातःकाल आठ बजे नाक कटवाने और नारायण के दर्शन करने का बड़ा अच्छा मुहूर्त्त है । वाह रे पोप जी ! अपनी पोथी में नाक काटने-कटवाने का भी मुहूर्त्त लिख दिया । जब राजा की इच्छा हुई और उन सहस्र नकटों के सीधे बांध दिये तब तो वे बड़े ही प्रसन्न होकर नाचने, कूदने और गाने लगे । यह बात राजा के दीवान आदि कुछ-कुछ बुद्धि वालों को अच्छी न लगी । राजा के एक चार पीढ़ी का बूढ़ा ९० वर्ष का दीवान था । उसको जाकर उसके परपोते ने, जो कि उस समय दीवान था, वह बात सुनाई । तब उस वृद्ध ने कहा कि वे धूर्त्त हैं । तू मुझको राजा के पास ले चल । वह ले गया । बैठते समय राजा ने बड़े हर्षित होके उन नाककटों की बातें सुनाईं । दीवान ने कहा कि सुनिये महाराज ! ऐसी शीघ्रता न करनी चाहिये । विना परीक्षा किये पश्चात्ताप होता है ।

(राजा) क्या ये सहस्र पुरुष झूठ बोलते होंगे ?

(दीवान) झूठ बोलो या सच, विना परीक्षा के सच-झूठ कैसे कह सकते हैं ?

(राजा) परीक्षा किस प्रकार करनी चाहिये ?

(दीवान) विद्या, सृष्टिक्रम, प्रत्यक्षादि प्रमाणों से ।

(राजा) जो पढ़ा न हो वह परीक्षा कैसे करे ?

(दीवान) विद्वानों के संग से ज्ञान की वृद्धि करके ।

(राजा) जो विद्वान् न मिले तो ?

(दीवान) पुरुषार्थी को कोई बात दुर्लभ नहीं है ।

(राजा) तो आप ही कहिये कैसा किया जाय ?

(दीवान) मैं बुड्ढा और घर में बैठा रहता हूं और अब थोड़े दिन जीऊंगा भी । इसलिये प्रथम परीक्षा मैं कर लेऊँ । तत्पश्चात् जैसा उचित समझें वैसा कीजियेगा ।

(राजा) बहुत अच्छी बात है । ज्योतिषी जी ! दीवान के लिये मुहूर्त्त देखो ।

(ज्योतिषी) जो महाराज की आज्ञा । यही शुक्ल पञ्चमी 10 बजे का मुहूर्त्त अच्छा है ।

जब पञ्चमी आई तब राजा जी के पास [आ कर] आठ बजे बुड्ढे दीवान जी ने राजा जी से कहा कि सहस्र दो सहस्र सेना लेके चलना चाहिये ।

(राजा) वहां सेना का क्या काम है ?

(दीवान) आपको राज्यव्यवस्था की जानकारी नहीं है । जैसा मैं कहता हूं वैसा कीजिये ।

(राजा) अच्छा जाओ भाई, सेना को तैयार करो ।

साढ़े नौ बजे सवारी करके राजा सब को लेकर गया । उसको देख कर वे नाचने और गाने लगे । जाकर बैठे । उनके महन्त जिसने यह सम्प्रदाय चलाया था, जिसकी प्रथम नाक कटी थी उसको बुलाकर कहा कि आज हमारे दीवान जी को नारायण का दर्शन

कराओ। उसने कहा अच्छा। दश बजे का समय जब आया तब एक थाली मनुष्य ने नाक के नीचे पकड़ रक्खी। उसने पैना चाकू ले नाक काट थाली में डाल दी और दीवान जी की नाक से रुधिर की धार छूटने लगी। दीवान जी का मुख मलिन पड़ गया। फिर उस धूर्त्त ने दीवान जी के कान में मन्त्रोपदेश किया कि आप भी हंसकर सब से कहिये कि मुझको नारायण दीखता है। अब नाक कटी हुई नहीं आवेगी। जो ऐसा ना कहोगे तो तुम्हारा बड़ा ठट्ठा होगा। सब लोग हंसी करेंगे। वह इतना कह अलग हुआ और दीवान जी ने अंगोछा हाथ में ले नाक की आड़ में लगा दिया। जब दीवान जी से राजा ने पूछा, कहिये ! नारायण दीखता है वा नहीं ? दीवान जी ने राजा के कान में कहा कि कुछ भी नहीं दीखता, वृथा इस धूर्त्त ने सहस्रों मनुष्यों को भ्रष्ट किया। राजा ने दीवान से कहा - अब क्या करना चाहिये ? दीवान ने कहा - इनको पकड़ के कठिन दण्ड देना चाहिये। जब लों जीवें तब लों बन्दीघर में रखना चाहिये और इस दुष्ट को कि जिसने इन सबको बिगाड़ा है, गधे पर चढ़ा बड़ी दुर्दशा के साथ मारना चाहिये। जब राजा और दीवान कान में बातें करने लगे तब उन्होंने डरके भागने की तैयारी की, परन्तु चारों और फौज ने घेरा दे रक्खा था, न भाग सके। राजा ने आज्ञा दी कि सबको पकड़ बेड़ियां डाल दो और इस दुष्ट का काला मुख कर, गधे पर चढ़ा, इस के कण्ठ में फटे जूतों का हार पहिना, सर्वत्र घुमा, छोकरों से धूड़-राख इस पर डलवा, चौक-चौक में जूतों से पिटवा, कुत्तों से लुंचवा, मरवा डाला जावे। जो ऐसा न होवे तो पुनः दूसरे भी ऐसा काम करते न डरेंगे। जब ऐसा हुआ तब नाककटे का सम्प्रदाय बन्द हुआ।

इसी प्रकार सब वेदविरोधी दूसरों का धन हरने में बड़े चतुर हैं।

यह सम्प्रदायों की लीला है । ये स्वामी नारायण मत वाले धनहरे छल कपटयुक्त काम करते हैं । कितने ही मूर्खों के बहकाने के लिये मरते समय कहते हैं कि सफेद घोड़े पर बैठ सहजानन्द जी मुक्ति को ले जाने के लिये आये हैं और नित्य इस मन्दिर में एक बार आया करते हैं ।

जब मेला होता है तब मन्दिर के भीतर पुजारी रहते हैं और नीचे दुकान लगा रक्खी है । मन्दिर में से दुकान में जाने का छिद्र रखते हैं । जो किसी का नारियल चढ़ाया वही दुकान में फेंक दिया अर्थात् इसी प्रकार एक नारियल दिन में सहस्र वार बिकता है । ऐसे ही सब पदार्थों को बेचते हैं । जिस जाति का साधु हो उससे वैसा ही काम कराते हैं । जैसे नापित हो उससे नापित का, कुम्हार से कुम्हार का, शिल्पी से शिल्पी का, बनिये से बनिये का और शूद्र से शूद्रादि का काम लेते हैं । अपने चेलों पर एक कर (टिक्कस) बांध रक्खा है । लाखों क्रोड़ों रुपये ठग के एकत्र कर लिये हैं और करते जाते हैं । जो गद्दी पर बैठता है वह गृहस्थ करता है, आभूषणादि पहिनता है । जहां कहीं पधरावनी होती है वहां गोकुलिये के समान गोसाईं जी, बहू जी आदि के नाम से भेंट पूजा लेते हैं । अपने 'सत्सङ्गी' और दूसरे मत वालों को 'कुसङ्गी' कहते हैं । अपने सिवाय दूसरा कैसा ही उत्तम धार्मिक, विद्वान् पुरुष क्यों न हो परन्तु उसका मान्य और सेवा कभी नहीं करते, क्योंकि अन्य मतस्थ की सेवा करने में पाप गिनते हैं । प्रसिद्धि में उनके साधु स्त्रीजनों का मुख नहीं देखते परन्तु गुप्त न जाने क्या लीला होती होगी ? इसकी प्रसिद्धि सर्वत्र न्यून हुई है । कहीं-कहीं साधुओं की परस्त्रीगमनादि लीला प्रसिद्ध हो गई है और उनमें जो-जो बड़े-बड़े हैं वे जब मरते हैं तब उनको गुप्त कुवे में फेंक देकर प्रसिद्ध करते हैं कि अमुक महाराज सदेह वैकुण्ठ में

गये । सहजानन्द जी आके ले गये । हमने बहुत प्रार्थना करी कि महाराज इनको न ले जाइये क्योंकि इस महात्मा के यहां रहने से अच्छा है । सहजानन्द जी ने कहा कि नहीं, अब इनकी वैकुण्ठ में बहुत आवश्यकता है, इसलिये ले जाते हैं । हमने अपनी आंख से सहजानन्द जी को और विमान को देखा तथा जो मरने वाले थे उनको विमान में बैठा दिया, ऊपर को ले गये और पुष्पों की वर्षा करते गये ।

और जब कोई साधु बीमार पड़ता है और उसके बचने की आशा नहीं होती तब कहता है कि मैं कल रात को वैकुण्ठ में जाऊंगा । सुना है कि उस रात में जो उस के प्राण न छूटे और मूर्छित हो गया हो तो भी कुवे में फेंक देते हैं, क्योंकि जो उस रात को न फेंक दें तो झूठे पड़ें, इसलिये ऐसा काम करते होंगे । ऐसे ही जब गोकुलिया गोसाईं मरता है तब उनके चेले कहते हैं कि 'गोसाईं जी लीला विस्तार कर गये' । जो इन गोसाईं, स्वामी नारायण वालों का उपदेश करने का मन्त्र है वह एक ही है । **'श्रीकृष्णः शरणं मम'** - इसका अर्थ ऐसा करते हैं कि 'श्रीकृष्ण मेरा शरण है अर्थात् मैं श्रीकृष्ण के शरणागत हूं', परन्तु इसका अर्थ 'श्रीकृष्ण मेरे शरण को प्राप्त अर्थात् मेरे शरणागत हों', ऐसा भी हो सकता है । ये सब जितने मत हैं वे विद्याहीन होने से ऊटपटांग शास्त्र-विरुद्ध वाक्य-रचना करते हैं, क्योंकि उनको विद्या के नियम की जानकारी नहीं ।

[सन्दर्भ ग्रन्थ : सत्यार्थप्रकाश, ११वां समुल्लास]

:: २ ::

स्वामी नारायण मत खण्डन

- डॉ० भवानीलाल भारतीय

गुजरात देश में स्वामी नारायण मत का पर्याप्त प्रचार है । स्वामी दयानन्द स्वयं गुजराती थे । उन्हें इस मत को निकटता से देखने का अवसर मिला था । अतः उन्होंने प्रसंगोपात्त दृष्टि से स्वामी नारायण मत की आलोचना भी लिखी । स्वामी नारायण मत का प्रवर्त्तक सहजानन्द नामक एक व्यक्ति था जो ब्रह्मचारी के रूप में गुजरात, काठियावाड़ तथा कच्छ आदि पश्चिमी प्रदेशों में यथेच्छ भ्रमण करता रहा । यहां उसके एक दो शिष्य भी बने । अब गुरु-शिष्यों ने परस्पर सम्मति की और सहजानन्द को चतुर्भुज नारायण के अवतार के रूप में प्रसिद्ध करने का निश्चय किया । इसके लिए उन्होंने काठियावाड़ के एक जमींदार को चतुर्भुज नारायण का दर्शन कराने का प्रलोभन दिया और सहजानन्द को विष्णु वेश धारण करा कर एक अन्धेरे कमरे में बिठा दिया और सहजानन्द को विष्णु-वेश धारण करा कर एक अन्धेरे कमरे में बिठा दिया । द्विभुज पुरुष को चतुर्भुज बनाने का एक उपाय उन्होंने यह किया कि एक अन्य पुरुष को सहजानन्द के पीछे बिठा दिया जिसने अपने दो हाथ निकाल कर उनमें गदा और पद्म (कमल) धारण कर लिये जबकि सहजानन्द के हाथों में शंख और चक्र दे दिये गये । इस प्रकार अन्धेरे कमरे में एक क्षण भर के लिये प्रकाश कर उस

काठियावाड़ी सामन्त को साक्षात् विष्णु भगवान् का करा दिया गया। दादा खाचर नामक इस जमींदार ने अपने प्रभाव से स्वामी नारायण मत का गुजरात में व्यापक प्रचार किया। सम्प्रदायगत संकीर्णताएं एवं मानव के लिए अहितकारी बातें भी किस प्रकार तीव्र गति से प्रचारित हो जाती हैं इसे स्पष्ट करने के लिए स्वामी दयानन्द ने नारायणदर्शियों के एक 'नकटा सम्प्रदाय' का रोचक उदाहरण दिया है।

जब किसी अपराध के दण्ड-स्वरूप किसी अपराधी का राजा के द्वारा नाक काट लिया गया तो उसके दिमाग में एक फितूर सवार हुआ। उसने यह कहना आरम्भ किया कि नाक की ओट दूर हो जाने से अब उसे साक्षात् भगवान् के दर्शन होने लगे हैं। जब अन्य लोगों को भी नारायण दर्शन की लालसा उत्पन्न हुए तो उसने उनके समक्ष यह प्रस्ताव रखा कि वे नाक कटा लें, उन्हें नारायण के प्रत्यक्ष दर्शन अवश्य हो जायेंगे।

दुनियां में मूर्खों का कभी अभाव नहीं रहा। जब प्रथम नारायण-दर्शी की नाक काटी गई तो इस धूर्त-मण्डली के आदि प्रवर्त्तक उस नकटे अपराधी ने उसके कान में चुपचाप कह दिया कि भाई, अब नाक तो कट गयी, तू भी मेरी तरह झूठ-मूठ यह कहने के लिए तैयार हो जा कि तुझे भगवान् चतुर्भुज नारायण के साक्षात् दर्शन हो रहे हैं। उसने ऐसा ही किया और अब नारायणदर्शी नकटों की एक पूरी जमात ही खड़ी हो गई। जब नारायण-दर्शन का उसका यह सहज नुस्खा उस देश के 'देवानांप्रिय' राजा को विदित हुआ तो उसके मन में भी भगवत्साक्षात्कार की लालसा उत्पन्न हुई। उसने चटपट नकटा-सम्प्रदाय के गुरु को बुलाया और उसके समक्ष नाक काटकर नारायण-दर्शन करने का प्रस्ताव रखा। राजा के कहने

से ज्योतिषी ने चटपट पत्रा देखकर नाक कटाने का मुहूर्त भी निकाल दिया। इस पर स्वामी जी की चुभती हुई टिप्पणी द्रष्टव्य है – "वाह रे पोपजी ! अपनी पोथी में नाक काटने-कटवाने का भी मुहूर्त लिख दिया।"

द्रष्टान्त आगे बढ़ता है । राजा के बुद्धिमान् एवं विचारशील मन्त्री को यह बात कुछ कम जंची कि नाक कटाने मात्र से ही भगवान् के दर्शन हो जाते हैं। वह राजा के समक्ष उपस्थित हुआ और उसने निवेदन किया कि "उससे पूर्व कि आप नाक कटाकर नारायणदर्शी बनें, मुझे यह अवसर दीजिए कि मैं इन धूर्त्तों की पोल खोल कर इस पाखण्ड का भंडा-फोड़ कर सकूं ।" अन्ततः जब दीवान की भी नाक काटकर उसे यह कहा गया कि वह भी अन्य नकटों की भांति यह घोषणा कर दे कि उसे भी नारायण के दर्शन हो गये हैं, तो इस सत्यवादी मन्त्री ने नकटों का भंडा फोड़ दिया तथा उन्हें दण्डित किया गया। साम्प्रदायिक मनोवृत्ति के लोगों पर यह दृष्टान्त पूर्णतया चरितार्थ होता है।

स्वामी नारायण मत का विशेष खण्डन स्वामी दयानन्द ने 'शिक्षापत्री ध्वान्त निवारण' शीर्षक एक अन्य लघु पुस्तिका में किया है। 'शिक्षापत्री' इस सम्प्रदाय की आधारभूति पुस्तक है। इसके ५३ श्लोकों को उद्धृत कर स्वामी जी ने पुनः स्वामी नारायण मत की मान्यताओं का प्रमाण-पुरस्सर खण्डन किया है। स्वामी नारायण मत के अनुसार कृष्ण ही साक्षात् ब्रह्म तथा विष्णु के अवतार हैं । इस सम्प्रदाय में राधापति कृष्ण ही पूज्य एवं उपास्य हैं। ग्रन्थारम्भ में ही कृष्ण का राधा-वल्लभ एवं लक्ष्मी-पति का रूप चित्रित करते हुए मंगलाचरण में कहा गया है –

वामे यस्य स्थिता राधा श्रीश्च यस्यास्ति वक्षसि ।

वृन्दावनविहारं तं श्रीकृष्णं हृदि चिन्तये ॥ १ ॥

जिनके वाम भाग में राधा और वक्ष पर लक्ष्मी विराजमान है उन वृन्दावन-बिहारी कृष्ण का मैं हृदय से चिन्तन करता हूं ।

स्वामी नारायण मत में नारायण और शिव को एक ही माना गया है और दोनों ही ब्रह्म रूप हैं यह वेद प्रतिपादित तथ्य है –

ऐकात्म्यमेव विज्ञेयं नारायणमहेशयोः ।

उभयोर्ब्रह्मरूपेण वेदेषु प्रतिपादनात् ॥ ४७ ॥

सम्भवतः इस प्रकार विष्णु और शिव की एकता[१] का प्रतिपादन करने की आवश्यकता सहजानन्द को इसलिए प्रतीत हुई थी कि उस युग में शैव-वैष्णवों का संघर्ष अपनी पराकाष्ठा को पहुंच चुका था । शैव और वैष्णव पुराणों में जिस प्रकार एक देवता के अनुयायियों ने अन्य देवता की पूजा, उपासना का जिस विद्वेषपूर्ण भाव से विरोध किया है[२] उसे देखने से स्पष्ट हो जाता है कि इस साम्प्रदायिक संघर्ष ने भारत के समन्वयशील एवं सहिष्णुतापूर्ण धार्मिक चिन्तन को पूर्ण अस्त-व्यस्त कर दिया था । शायद इसी सन्दर्भ में शिक्षापत्री के लेखक ने नारायण-महेश की एकता का नारा लगाया और दोनों देवताओं को ही ब्रह्मरूप तथा वेदप्रतिपादित घोषित किया । उससे पूर्व के श्लोक में सहजानन्द ने शैव मत के चिह्नों त्रिपुण्ड्र और रुद्राक्ष धारण को यथाकथंचित् सहन करने की बात कही है । मध्य युग के प्रसिद्ध रामोपासक भक्त कवि तुलसीदास ने भी शैव-वैष्णव संघर्ष को समाप्त करने का ऐसा ही प्रयास किया था ।[३]

शिक्षापत्री की अन्य शिक्षायें वैष्णव मत की सामान्य बातों के

ही तुल्य हैं । स्त्रियों को वेदादि शास्त्र पठन, श्रवण, अध्ययन, अध्यापन का अधिकार अन्य मध्यकालीन की भांति सहजानन्द भी ने स्वीकार नहीं किया । उसके अनुसार –

ज्ञानवार्ताश्रुतिर्नार्या मुखात् कार्या न पुरुषैः ।

न विवादः स्त्रिया कार्यो न राज्ञा न च तज्जनैः ॥ ३४ ॥

स्त्री से श्रुति अथवा ज्ञान-वार्ता पुरुषों को नहीं सुननी चाहिए और न राजा एवं राज-पुरुषों से साथ वाद-विवाद ही करना चाहिए । श्लोक के उत्तरार्ध में तो एक नीति की बात कही गई है, परन्तु नारियों से वेद-विमर्श न करना एक भ्रान्त धारणा ही है कारण कि उपनिषद् युग में याज्ञवल्क्य आदि ऋषियों ने जनक सभा में गार्गी जैसी विदुषियों से ब्रह्म-तत्त्व विचार तथा ज्ञान चर्चा की थी । इस ब्रह्म-विद्या का आधार श्रुति (वेद) ही हैं ।

सहजानन्द प्रवर्त्तित स्वामी नारायण सम्प्रदाय में तुलसी, माला तथा ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण का विधान किया गया है ।[४] मूर्त्तिपूजा के प्रति यह सम्प्रदाय भी उतना ही निष्ठावान् है, जितने अन्य वैष्णव सम्प्रदाय । स्वगुरु और आचार्य द्वारा प्रदत्त कृष्ण की मूर्त्ति की पूजा-अर्चना ही यहां कर्त्तव्य मानी गई है । सहजानन्द ने एकादशी, कृष्ण-जन्माष्टमी आदि वैष्णव पर्वों के साथ शिवरात्रि को भी महत्त्व देकर अपनी समन्यवबुद्धि का परिचय दिया[५], किन्तु प्रकृत्या वह वल्लभाचार्य का ही अनुयायी है क्योंकि अपने इस ग्रन्थ में आगे चलकर वह वल्लभ पुत्र विट्ठलनाथ द्वारा प्रवर्त्तित व्रत-उत्सवों को करने का ही विधान करता है ।[६]

स्वामी नारायण मत में विष्णु, शिव, गणपति, सूर्य तथा शक्ति की पंचायतन पूजा को भी स्थान प्राप्त हुआ है ।[७] इस प्रकार यह मत

मुख्यतः पुराणाश्रित ही है क्योंकि पुराणों में ही शिव, विष्णु आदि पंच देवताओं को प्रमुखता प्राप्त कराई गई है।

स्वामी नारायण मत में निम्न आठ ग्रन्थ प्रमाणभूत माने गये हैं – वेदव्यास (बादरायण) रचित वेदान्त सूत्र, श्रीमद्भागवत्, महाभारतोक्त विष्णुसहस्रनाम, श्रीमद्भगवद्गीता और विदुरनीति। इसी प्रकार स्कन्द पुराण के वैष्णव खण्ड में कहा गया वासुदेव माहात्म्य तथा धर्मशास्त्र के अन्तर्गत याज्ञवल्क्य स्मृति ।[८] इससे स्पष्ट है कि इस सम्प्रदाय में मुख्यतः उन्हीं ग्रन्थों को प्रामाणिक माना गया है जो वैष्णव मत का निरूपण करते हैं । गीता, विष्णुसहस्रनाम तथा भागवत तो सहज ही वैष्णव वाङ्मय के अन्तर्गत आ जाते हैं। स्वामी दयानन्द ने सहजानन्द द्वारा की गई इस ग्रन्थ-प्रमाण-मीमांसा का विचार करते हुए ठीक ही लिखा है कि – "याज्ञवल्क्य स्मृति की मिताक्षरी टीका का ग्रहण और पूर्व मीमांसा तथा मनुस्मृति का त्याग करने से सिद्ध होता है कि सहजानन्द अविद्वान् था ।... भागवत के भ्रष्ट, मिथ्या, भूतप्रेत, अधर्म कथा प्रतिपादक दशम स्कन्ध को सर्व शास्त्रों की अपेक्षा श्रेष्ठ मानता है । अत एव जान पड़ता है कि सहजानन्द वेदनिन्दक (नास्तिक) था ।"[९] सहजानन्द को गीता और वेदान्त सूत्रों पर रामानुज का भाष्य मान्य है । क्योंकि रामानुज ने ही सर्वप्रथम विशिष्टाद्वैत मत को अपना कर इन ग्रन्थों का वैष्णव मत के अनुकूल अर्थ किया था ।[१०] रामानुजीय दर्शन के प्रति अपनी स्पष्ट आस्था व्यक्त करते हुए सहजानन्द ने लिखा –

हृदये जीववज्जीवे योऽन्तर्यामितया स्थितः ।

ज्ञेयः स्वतन्त्र ईशोऽसौ सर्वकर्मफलप्रदः ॥ १०७ ॥

स श्रीकृष्णः परंब्रह्म भगवान् पुरुषोत्तमः ।

उपास्य इष्टदेवो नः सर्वाविर्भावकारणम् ॥ १०८ ॥

अर्थात् जिस प्रकार हृदय में जीव रहता है, उसी प्रकार ईश्वर अन्तर्यामी रूप से जीव में रहता है । वह स्वतन्त्र और सबको न उनके कर्मों का फल दाता है । वह पूर्ण पुरुषोत्तम परम ब्रह्म श्रीकृष्ण उपासना करने योग्य, इष्ट देव तथा सर्व पदार्थों के आविर्भाव का कारण है ।

इसे स्पष्ट करते हुए शिक्षापत्री में कहा गया है –

मतं विशिष्टाद्वैतं मे गोलोको धाम चेप्सितम् ।

तत्र ब्रह्मात्मना कृष्णसेवा मुक्तिश्च गम्यताम् ॥ १२१ ॥

मेरा मत विशिष्टाद्वैत है और गोलोक मेरा प्रिय धाम है ।

इस प्रकार स्वामी नारायण सम्प्रदाय में भी वैष्णव मत की सम्पूर्ण दुर्बलताएं तथा विकृतियां स्वतः ही समाविष्ट हो गई हैं ।

सहजानन्द ने अपने जीवनकाल में लक्ष्मीनारायण के बड़े-बड़े मन्दिर बनवाये और उनकी पूजा का विधान किया । उसने एक ओर एकादशी व्रत धारण तो दूसरी ओर श्रावण मास में बिल्वपत्रों से शिव पूजन का विधान कर वैष्णवों और शैवों में प्रचलित दोनों प्रकार के कर्मकाण्डों का समान रूप से समर्थन किया ।[११] इस प्रकार सहजानन्द प्रवर्त्तित स्वामी नारायण मत का व्यवस्थित समीक्षण कर स्वामी जी ने लिखा – "ये सब जितने मत हैं, वे विद्याहीन होने से ऊट-पटांग शास्त्रविरुद्ध वाक्यरचना करते हैं क्योंकि उनको विद्या के नियमों की खबर नहीं है ।" स्वामी नारायण मत वाले भी वल्लभाचार्य के तुल्य 'श्रीकृष्णः शरणं मम' को अपना मन्त्र मानते हैं

तथा इसी का उपदेश देते हैं। चक्रांकितों के तुल्य इनमें शरीर को लोहे के चिह्नों से दागने की परिपाटी भी प्रचलित है।

वैष्णवों और शैवों के अवान्तर सम्प्रदाय भी हैं। वैष्णवों में श्री वैष्णव, निम्बार्क, मध्व और वल्लभ मतानुयायी परिगणित होते हैं। स्मार्त वैष्णव पृथक् हैं। राधावल्लभी, चैतन्य मतानुयायी आदि वैष्णवों ने कृष्ण की अपेक्षा राधा को अधिक महत्त्व दिया। शैवों में भी लकुलीश, लिंगायत आदि विभिन्न अवान्तर सम्प्रदाय हैं। सामान्य रूप से वैष्णवों और शैवों की विस्तृत समीक्षा प्रस्तुत करने के अनन्तर स्वामी जी ने मध्व और लिंगांकितों के सम्बन्ध में भी कुछ लिखना उपयुक्त समझा। मध्वाचार्य के अनुयायी माध्व मतावलम्बी वैष्णव हैं। आचार्य मध्व द्वैतवादी दार्शनिक थे।[१२] जिन्होंने ब्रह्मसूत्र की भेदवादी व्याख्या की है तथा शंकराचार्य के अद्वैतवाद का खण्डन किया है। ब्रह्मसूत्रों के अतिरिक्त इन्होंने गीता तथा उपनिषदों पर भी भाष्य लिखे। मध्व ने वेदार्थ करते हुए अधिकांश मन्त्रों की विष्णुपरक व्याख्यायें की हैं।[१३] परन्तु जहां तक साम्प्रदायिक आचार-विचार का सम्बन्ध है, माध्व लोग भी चक्रांकित रामानुजियों की ही भांति हैं। ये लोग वर्ष में एक बार विष्णु चिह्नों से अपने शरीर को दागते हैं। इनका तिलक भी श्री वैष्णवों से भिन्न प्रकार का होता है। इनके तिलक में एक काली रेखा होती है। इनकी धारणा है कि श्री कृष्ण के श्याम रंग के अनुकरण पर ही ये भी तिलक की रेखा काली ही रखते हैं। मध्व मत का विशेष प्रचार दक्षिण भारत में है। उडुपी (कर्नाटक) इस सम्प्रदाय का प्रमुख केन्द्र है। मध्व के द्वैतवाद-प्रतिपादन से चिढ़ कर अद्वैतवादियों ने इनके मत का तीव्र और कटु खण्डन किया है। सर्वत्र ब्रह्म बुद्धि रखने वाले इन अद्वैतवादियों के हृदय की कटुता तथा

द्वैतमत के प्रति दुगुना द्वेष-भाव मध्व मत की इन खण्डनात्मक पुस्तकों के नामों से भी ज्ञात होता है। यथा माध्व मुखमर्दन, माध्व मुख चपेटिका, दुर्जन करि पंचानन आदि। अप्पय दीक्षित ने मध्व मत के खण्डन में दो ग्रन्थ लिखे – मध्वमत विध्वंसन और मध्वतन्त्र मुख मर्दन। लिंगाकिंत – जिस प्रकार वैष्णव लोग अपने शरीर को चतुर्भुज विष्णु के शंख, चक्र, गदा, पद्म से अंकित करते हैं, उसी प्रकार लिंगाकिंत शैव अपने शरीर को लिंगाकृति से दागते हैं। लिंग की आकृति का एक स्वर्ण, रजत अथवा पाषाण निर्मित चिह्न ये अपने गले में लटकाये रहते हैं। लिंगायत सम्प्रदाय का प्रचलन आन्ध्र प्रदेश में अधिक है। चन्न बसवेश्वर नामक व्यक्ति ने इस सम्प्रदाय का प्रचार किया था।

स्वामी नारायण मत विषयक परिचयात्मक ग्रन्थ :

१. शिक्षापत्री मूल २१२ कारिकाओं का हिन्दी अनुवाद
२. स्वामी नारायण वेदान्त परिचय – ले० रमेश म० दवे
३. सम्प्रदाय का विकास एवं गुरु परम्परा – ले० हर्षदराम त्रिवेदी
४. भगवान् स्वामी नारायण – ले० हरीन्द्र दवे
५. अक्षर मूर्त्ति गुणातीतानन्द स्वामी – ले० साधु ईश्वर चरणदास

पाद-टिप्पणियां :

१. अग्निपुराण (अध्याय १२) में कहा गया है कि विष्णु और शिव में कोई भेद नहीं है। जो भेद मानता है उसे नरक की प्राप्ति होगी – **'आवयोर्नास्ति भेदो वै भेदी नरकमाप्नुयात्।'**

२. परन्तु अन्य पुराणों में सर्वत्र विष्णु और शिव के भेद को माना ही नहीं गया है, किन्तु उसे आंच देकर तीव्र भी बनाया गया है –

शिवार्चनाद्ब्राह्मणस्तु शूद्रेण समतामियात् ।
तिर्यक्पुण्ड्रधरं विप्रं चाण्डालमिव संत्यजेत् ॥

अर्थात् शिव पूजा करने से ब्राह्मण शूद्र के तुल्य हो जाता है । तिरछे पुण्ड्रधारी ब्राह्मण को चाण्डाल के तुल्य त्याग देना चाहिए । इसी प्रकार वैष्णवों को गर्हा में कहा गया – **वैष्णवः पुरुषो यस्तु शिव ब्रह्मादि देवताः । प्रणमेतार्चयेद्वापि विष्ठायां जायते कृमिः ॥** अर्थात् वैष्णव पुरुष को नमस्कार करने तथा पूजने से मनुष्य विष्ठा का कीड़ा बनता है ।

३. **शिव द्रोही मम दास कहावा ।**
सो नर सपनेहु मोहि नहिं पावा । (रामचरित मानस में राम का कथन ।)

४. **कृष्णदीक्षां गुरोः प्राप्तैस्तुलसीमालिके गले ।**
धार्ये नित्यं चोर्ध्वपुण्ड्रं ललाटादौ द्विजातिभिः ॥ ४१ ॥

५. **एकादशीनां सर्वासां कर्तव्यं व्रतमादरात् ।**
कृष्णजन्मदिनानां च शिवरात्रेश्च सोत्सवम् ॥ ७९ ॥

६. **सर्ववैष्णवराजश्रीवल्लभाचार्यनन्दनः ।**
श्रीविठ्ठलेशः कृतवान् यं व्रतोत्सवनिर्णयम् ॥ ८१ ॥

७. **विष्णुः शिवो गणपतिः पार्वती च दिवाकरः ।**
एताः पूज्यतया मान्या देवताः पञ्च मामकैः ॥ ८४ ॥

८. **वेदाश्च व्याससूत्राणि श्रीमद्भागवताभिधम् ।**
पुराणं भारते तु श्रीविष्णोर्नामसहस्रकम् ॥ ९३ ॥
तथा श्रीभगवद्गीता नीतिश्च विदुरोदिता ।
श्रीवासुदेवमाहात्म्यं स्कान्दवैष्णवखण्डगम् ॥ ९४ ॥

धर्मशास्त्रान्तर्गता च याज्ञवल्क्यऋषेः स्मृतिः ।
एतान्यष्ट ममेष्टानि सच्छास्त्राणि भवन्ति हि ॥ ९५ ॥

९. शिक्षापत्री ध्वान्त निवारण, पृ० २७

१०. **शारीरकाणां भगवद्गीतायाश्चावगम्यताम् ।**
रामानुजाचार्यकृतं भाष्यमाध्यात्मिकं मम ॥ १०० ॥

११. **एकादशीमुखानां च व्रतानां निजशक्तितः ।**
उद्यापनं यथाशास्त्रं कर्तव्यं चिन्तितार्थदम् ॥ १४८ ॥
कर्त्तव्यं कारणीयं वा श्रावणे मासि सर्वथा ।
बिल्वपत्रादिभिः प्रीत्या श्रीमहादेवपूजनम् ॥ १४९ ॥

१२. आचार्य मध्व (अपर नाम आनन्द तीर्थ) का जन्म १२५५ वि० तथा मृत्यु १३३५ वि० में हुई ।

१३. मध्व ने ऋग्वेद के प्रथम ४० सूक्तों पर भाष्य लिखा । भाष्यारम्भ में वे लिखते हैं –
स पूर्णत्वात् पुमान्नाम पौरुषे सूक्त ईरितः ।
स एवाखिलवेदार्थः सर्वशास्त्रार्थ एव च ॥
अर्थात् वही नारायण सर्वज्ञ पूर्ण होने से पुरुष नाम से पुरुष सूक्त में कहा गया है । यही सारे वेद का अर्थ है और सारे शास्त्र का भी ।

[**सन्दर्भ ग्रन्थ :** भारतवर्षीय मत मतान्तर समीक्षा, लेखक : प्रो० (डॉ०) भवानीलाल भारतीय, प्रकाशक : आर्य प्रकाशन, 814-कूण्डेवालान, अजमेरी गेट, दिल्ली, संस्करण 2051 वि० (1994 ई०), प्रकरण, स्वामी नारायण मत खण्डन, पृ० 184-190]

:: ३ ::

स्वामी नारायण सम्प्रदाय और मूर्त्तिपूजा

[स्वामी नारायण अक्षरपीठ द्वारा प्रकाशित गुजराती पुस्तक 'सनातन धर्म अभिगम' के 'मूर्त्तिपूजा' प्रकरण की तार्किक समीक्षा]

- डॉ० भवानीलाल भारतीय

स्वामी नारायण मत के बारे में गुजरात से भिन्न प्रदेशों के लोगों का ज्ञान अत्यल्प है। स्वामी दयानन्द स्वयं गुजराती थे और अपनी मातृभूमि में पैदा हुए और पनपे इस सम्प्रदाय की उन्हें अच्छी जानकारी थी। इस सम्प्रदाय का प्रवर्त्तन सहजानन्द नामक एक उत्तरप्रदेशीय ब्राह्मण ने किया था, जो खुद तो अयोध्या का रहनेवाला था, किन्तु जिसका कार्यक्षेत्र गुजरात रहा। कालान्तर में इस सम्प्रदाय ने गुजरातियों में अत्यन्त प्रचार पाया। आज तो इस सम्प्रदाय के सम्पन्न अनुयायियों ने करोड़ों रुपये व्यय कर स्वदेश में ही नहीं, अपितु विदेशों में भी अपने मत के ऐसे विशाल, भव्य तथा ऐश्वर्यपूर्ण मन्दिरों का निर्माण किया है, जिनकी समानता में अन्य किसी मठ-मन्दिर का ठहरना अशक्य ही है। स्वामी दयानन्द ने स्वामी नारायण मत की मूल पुस्तक **'शिक्षापत्री'** का खण्डन अपनी पुस्तक **'शिक्षापत्रीध्वान्तनिवारण'** (अथवा **'स्वामी नारायण**

मत खण्डन')[१] में विस्तार से किया है । तथापि आज इस सम्प्रदाय के सिद्धान्तों और मन्तव्यों का अत्यधिक प्रचार हो रहा है तथा इस मत के आचार्य, चिन्तक और विचारक नित्य नवीन साहित्य का प्रकाशन कर सहजानन्द के सिद्धान्तों की पुष्टि कर रहे हैं ।

सनातन धर्म अभिगम

आर्यसमाज के प्रबुद्ध तथा विचारशील युवक श्री भावेश मेरजा ने इस सम्प्रदाय के मुख्य स्थान स्वामी नारायण अक्षरपीठ, शाहीबाग, अहमदाबाद से प्रकाशित तथा **साधु श्री हरिदास** द्वारा सम्पादित एक पुस्तक **'सनातन धर्म अभिगम'**[२] मुझे भेजी है । इसमें चार प्रकरण हैं । आहार शुद्धि, ब्रह्मचर्य तथा पुनर्जन्म के अतिरिक्त इसमें मूर्त्तिपूजा शीर्षक एक पृथक् प्रकरण है, जिसमें अनेक हेतु (वस्तुतः हेत्वाभास), प्रमाण तथा युक्तियां देकर मूर्त्तिपूजा की प्राचीनता एवं औचित्य को सिद्ध करने का प्रयास किया गया है । यहां हम इसी प्रकरण में प्रस्तुत किये गये विचारों की समालोचना कर यह सिद्ध करने का प्रयत्न करेंगे कि स्वामी नारायण मत द्वारा मूर्त्तिपूजा का समर्थन वैदिक मन्तव्यों के तो प्रतिकूल है ही, वह ईश्वर उपासना में किसी भी प्रकार सहायक नहीं है ।

मूर्त्तिपूजा की अर्वाचीनता

'सनातन धर्म अभिगम' के लेखक का कथन है कि विश्व के उदयकाल से ही मूर्त्तिपूजा के प्रचलन का इतिहास मिलता है, अतः यह अत्यन्त प्राचीन है । हमारा निवेदन है कि मूर्त्ति बनाना

तथा मूर्त्ति को ईश्वर मानकर पूजना दो भिन्न बातें हैं। भारत में मूर्त्तिपूजा की प्रथा अत्यन्त अर्वाचीन है। हमारे पुरातन शास्त्रों में कहीं भी मूर्त्ति को माध्यम बनाकर ईश्वरोपासना कि आज्ञा नहीं दी गई। फिर इस तथ्य को भी नज़रअंदाज़ नहीं करना चाहिए कि कोई वस्तु पुरानी होने से ही स्वीकार्य और अच्छी नहीं होती। असत्य-भाषण, व्यभिचार, दुराचार अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित हैं, किन्तु इन्हें कभी अच्छा नहीं माना जाता। इसी तथ्य को ध्यान में रख कर महाकवि कालिदास ने लिखा था - '**पुराणमित्येव न साधु सर्वम्**' अर्थात् जो कुछ पुराना है, वह साधु ही हो, यह अनिवार्य नहीं है।

इसी प्रसंग में 'सनातन धर्म अभिगम' का लेखक लिखता है कि मध्य एशिया तथा पश्चिम में मूर्त्तिपूजा बहुत प्राचीन काल से प्रचलित रही, किन्तु बाद में यहूदियों के पैगम्बर मूसा, ईसाई मत के प्रवर्त्तक ईसा तथा इस्लाम के संस्थापक मोहम्मद ने इस प्रथा का विरोध किया। हमारे विचार से इन तीनों द्वारा मूर्त्तिपूजा का विरोध करना उचित ही था, क्योंकि उन दिनों उपर्युक्त देशों में भयंकर जड़पूजा प्रचलित थी और एक अद्वितीय परमात्मा के स्थान पर ग्रह, नक्षत्र, तारे, वृक्ष-वनस्पति, पशु-पक्षियों आदि को दैवी सत्ता का प्रतीक मान कर पूजा जाता था।

भारत में मूर्त्तिपूजा

भारत में मूर्त्तिपूजा की प्राचीनता के बारे में लेखक यह तो

स्वीकार करता है कि इस देश में देव-मन्दिरों का निर्माण कब शुरू हुआ तथा इनमें मूर्त्तिपूजा का कब आरम्भ हुआ, इसका कोई पक्का प्रमाण नहीं मिलता, किन्तु वह यह भी कहता है कि शास्त्रों के लिखे जाने के पहले से ही प्रतिमा-पूजन का प्रचलन था। अपने कथन की सिद्धि में वह कोई प्रमाण नहीं देता। सत्य तो यह है कि प्राचीन ब्राह्मण धर्म (वेदोक्त धर्म) में मूर्त्तिपूजा के लिये कोई स्थान नहीं था। जब इस देश में बौद्ध और जैन मत प्रचलित हुए और इन मतों के अनुयायियों ने गौतम बुद्ध तथा पार्श्वनाथ एवं महावीर आदि तीर्थंकरों की मूर्त्तियां बनाकर उनकी पूजा आरम्भ की, तभी से भारत में मूर्त्तिपूजा का प्रचलन हुआ। इससे पहले महाभारतकाल तक धातु या पाषाण निर्मित मूर्त्तियों के पूजने का कोई उल्लेख नहीं मिलता। लेखक की मान्यता है कि आधुनिक सुधारवादियों को चाहे मूर्त्तिपूजा न रुचे, किन्तु हिन्दू संस्कृति में इसे स्थान मिल गया है। आर्यसमाज का प्रत्यक्ष नाम न लेकर भी लेखक ने आधुनिक सुधारवादियों के प्रति कटाक्ष किया है। तथ्य यह है कि 'हिन्दू संस्कृति' शब्द ही भ्रामक है। जैसे 'हिन्दू' शब्द का प्रयोग किसी विशिष्ट सम्प्रदाय, मत, पन्थ या वर्ग के लिये नहीं लिया जा सकता है, उसी प्रकार 'हिन्दू संस्कृति' भी किसी सुविचारित चिन्तन, मान्यता अथवा सिद्धान्त का नाम नहीं है। अतः यदि कोई चाहे तो 'हिन्दू संस्कृति' के नाम पर यथेच्छ अच्छी-बुरी बातों का समर्थन किया जा सकता है। मतों, सम्प्रदायों तथा संकीर्ण विश्वासों से उपजे सभी प्रकार के अन्ध

कृत्य तथा कदाचार 'हिन्दू संस्कृति' के हिमायतियों द्वारा अच्छे सिद्ध किये जाते हैं । यही कारण है कि ईश्वर के मनुष्य रूप में जन्म लेने, योगशास्त्रोक्त उपासना के स्थान पर पत्थरों की पूजा, मृतक के लिये भोजन देना, जलाशयों को तीर्थ मानना तथा उनमें स्नान करने से पुण्य मानना, मन्दिरों में देवदासियों के द्वारा व्यभिचार का प्रचलन, देवी, भैरव आदि की पूजा में मद्य और मांसादि का प्रयोग – ये सभी अन्ध विश्वास आज 'हिन्दू संस्कृति' के अंग बन गये हैं और सुधारवादी आन्दोलनों के विरोधी उन सभी मूढ़ कृत्यों का वागाडम्बर द्वारा समर्थन करते हैं और मिथ्या तर्कों के आधार पर उनकी वैज्ञानिकता सिद्ध करने का निष्फल प्रयास करते हैं ।

ऋग्वेद में मूर्त्तिपूजा ?

लेखक का यह दावा है कि मूर्त्तिपूजा का सर्व प्रथम मूल तो वेदों में ही मिलता है । अपने कथन की सिद्धि में वह ऋग्वेद (१०.८१.१३) का प्रमाण देता है - **देवमानमिव चित्रं मनोहरं वेश तस्य भवति ।** हमने सम्पूर्ण ऋग्वेद संहिता देखी, किन्तु ऐसा कोई मन्त्र वहां नहीं है । ऋग्वेद के दसम मण्डल के ८१वें सूक्त में कुल ७ मन्त्र हैं, अतः '**देवमानम्...**' को १३वां मन्त्र बताना लेखक का मिथ्या तथा भ्रमोत्पादक कथन है । वह '**देवमानम्**' शब्द को देव-मन्दिर का वाचक बताता है, यह भी उसकी अज्ञता है । पुनः वह सायण को उद्धृत करता हुआ कहता है कि सायण ने '**देवमानम्**'

का पर्याय **'देवयानम्'** किया है और उसका अर्थ है - **'देवानां प्राप्तिसाधनम्'** अर्थात् देवताओं की प्राप्ति के लिये गृहादि का निर्माण। यदि दुर्जनतोष न्याय से यह मान भी लें कि **'देवमानम्'** का अर्थ देवों की प्राप्ति का साधन ही है तो इससे देवताओं के लिये मन्दिर बनाना यह अर्थ कैसे निकलेगा ? उसका अर्थ तो है – देवताओं को प्राप्त करने के साधन और वह मन्दिर निर्माण हरगिज नहीं है।

अब लेखक ऋग्वेद का एक अन्य मन्त्र १०.१०७.१० प्रस्तुत करता है, किन्तु उसका पता गलत देता है और उस मन्त्र को ऋग्वेद ३०.३०७.३० में बताता है। उसे यह पता नहीं कि ऋग्वेद में १० मण्डल ही हैं, तीसवां मण्डल कहां से आयेगा ? तथ्य यह है कि उसने ऋग्वेद के दर्शन ही नहीं किये और वह यों ही धूल में लट्ठ चला रहा है। वस्तुतः इस १०७वें सूक्त का देवता दक्षिणा अथवा दक्षिणा-दाता है। इस पूरे सूक्त में दक्षिणा (विद्वानों को भेंट अथवा सम्मान-सत्कार) की महिमा बताई गई है। यहां मन्दिर बनाने तथा उसमें मूर्त्तियों को प्रतिष्ठित करने की तो गन्ध भी नहीं है। मन्त्र में **'वेश्म'** शब्द आया है वह घर का वाचक है, किन्तु इसका अर्थ इतना ही है कि दानशील व्यक्तियों के लिये सुन्दर घर तैयार रहते हैं। सायण तथा रामगोविन्द त्रिवेदी द्वारा किये गये अर्थों से यह ध्वनि कदापि नहीं निकलती कि देवताओं के लिये मन्दिर बनाये जायें। यहां तो दान ग्रहण करने के अधिकारी को घोड़े देने तथा उपयुक्त पात्र (वर) को कन्या

दी जाती है ऐसा कथन है। क्या देवताओं को मन्दिरों में घोड़े दिये जाते हैं अथवा उनको मूर्त्तिपूजक अपनी कन्याएं देते हैं ? यह दूसरी बात है कि देवदासियों की भेंट कर इन मूर्त्तिपूजकों ने मन्दिरों को व्यभिचार का अड्डा तो बना ही दिया है।

शतपथ ब्राह्मण का प्रमाण घोर अज्ञान सूचक

इसी प्रसंग में स्वामी नारायण का यह भक्त आठ प्रकार की मूर्त्तियों की चर्चा करता है और कहता है कि यज्ञादि कार्यों में मिट्टी की मूर्त्ति का तथा ध्यान एवं उपासना के लिये पाषाण निर्मित प्रतिमा का प्रयोग होता है। इस कथन की सिद्धि के लिये उक्त लेखक ने शतपथ ब्राह्मण (१४.२.२.५४) को उद्धृत किया जहां वस्तुतः यज्ञ के लिये बनाये जाने वाले **'महावीर'** नामक एक मिट्टी के पात्र की चर्चा आई है। हमारे मित्र श्री भावेश मेरजा ने इस प्रसंग को जब शतपथ ब्राह्मण के अधिकारी विद्वान् डॉ० वेदपाल सुनीथ[३] के समक्ष प्रस्तुत किया तो उक्त विद्वान् ने इसका निम्न उत्तर दिया –

> "शतपथ ब्राह्मण का जो प्रमाण देव-प्रतिमा के लिये स्वामी नारायण मत वालों ने दिया है, वह शतपथ के ज्ञान से शून्य लोगों का छलना मात्र है। प्रवर्ग्य-याग में 'महावीर' नाम का एक मिट्टी का पात्र लगभग ९० अंगुल लम्बा बनाया जाता है। उसमें घी को चारों ओर से अग्नि जलाकर गर्म किया जाता है तथा घृत के खूब गर्म हो जाने पर उसमें

बकरी का दूध डाला जाता है और उस घी की आहुति पुनः आहवनीय कुण्ड में दी जाती है। यह मात्र एक आहुति देने का विशेष पात्र है, जैसे अन्य पात्र होते हैं। इससे देवों को आहुति दी जाती है, न कि यह स्वयं देव है। अतः इसे 'देव-प्रतिमा' कथन्तया भी नहीं माना जा सकता। प्रायः आहुति काष्ठ निर्मित पात्र से दी जाती है, अतः यह शंका हुई कि यह आहुति मिट्टी के बने पात्र से क्यों दी जाती है ? उसी प्रसंग में मान्य ब्राह्मणकार ने लिखा है कि यदि इस पात्र को काष्ठ का बनाया जाये तो यह जल जायेगा, क्योंकि इसके चारों ओर अग्नि को जलाकर घी को काफी गर्म किया जाता है। अन्य धातु-निर्मित पात्रों के भी विकृत होने की सम्भावना रहती है, अतः यह पात्र मिट्टी का बनाया जाता है। यह पात्र देवों को आहुति देने के लिये है, न कि स्वयं देव-प्रतिमा। सायणाचार्य ने भी अपने भाष्य में लिखा है – **यद्यस्मात् 'देवेभ्यः' देवानामर्थं 'वानस्पत्यैः' वनस्पति विकारैः दारुमयैः पात्रैः 'जुह्वति' । 'अथ कस्मात्' कारणात् अत्रैतत् धर्मलक्षणं हविः 'मुण्मयेन' मृद्विकारेणैव महावीरादिना पात्रेण 'जुहोति'** । (शत० १४.२.२.५३) अन्त में यही सायण ने लिखा है - **'तस्मात्' कारणात् 'एतत्' धर्माख्यं हविः 'मुण्मयेन' मृद्विकारेण पात्रेण महावीराख्येनैव 'जुहोति'** । (शत० १४.२.२.५४) अतः यह मृण्मय पात्र देव-प्रतिमा नहीं, अपितु देवों को हवि देने का पात्र है।"[४]

इसी प्रकार यजुर्वेद के '**मखाय त्वा मखस्य त्वा**' आदि ३७वें अध्याय के मन्त्रों को मूर्त्तिपूजा विधायक मानना भी लेखक के अज्ञान का सूचक है। '**मख**' शब्द यज्ञ का वाचक है, उसका मूर्त्ति से कुछ लेना देना नहीं है। ब्राह्मण ग्रन्थ में यदि '**अथ मृत्पिण्डं परिगृह्णाति**' वाक्य आता है तो यह उपर्युक्त प्रसंग का ही है जिसमें महावीर (यज्ञपात्र) बनाने के लिये मिट्टी का पिण्ड लेने की आज्ञा है। यह मिट्टी यज्ञपात्र के निर्माण के लिये ली जाती है, न कि देव-प्रतिमाओं के लिये।

मूर्त्तिपूजा और प्राणप्रतिष्ठा के बचाव के लिये वेदमन्त्रों का अनर्थ

लेखक का दुराग्रह यत्र-तत्र अभिव्यक्त हुआ है। वह वेदमन्त्रों के द्वारा देव-प्रतिमाओं में प्राणप्रतिष्ठा की बात करता है और अथर्ववेद (७.१८.१) का यह मन्त्र पेश करता है - **उद्नो दिव्यस्य नो धातरीशानो विष्या दृतिम्।** ऐसा लगता है कि लेखक ने अथर्ववेद की पुस्तक देखी ही नहीं है, अन्यथा वह गलत उद्धरण नहीं देता। क्योंकि अथर्ववेद के इस सूक्त में केवल दो मन्त्र हैं और उनके देवता क्रमशः पृथिवी और पर्जन्य हैं। इस सूक्त में अन्तरिक्ष और वर्षा का वर्णन किया गया है। इसमें मूर्त्ति या मूर्त्ति की प्राणप्रतिष्ठा सूचक एक भी शब्द नहीं है। आलोच्य मन्त्र में '**धात**' शब्द धारण-पोषण करने वाले परमात्मा के लिये आया है। यहां मूर्त्ति का कोई जिक्र नहीं है।

आगे लेखक ने यजुर्वेद (३६.१८) मन्त्र '**दृते दृंह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् ।**' को उद्धृत किया है । वह इसका मूर्त्तिपूजा विधायक अर्थ करता है । '**दृ**' का अर्थ विदारण (तोड़ना) करते हुए वह पाद टिप्पणी देता है कि पत्थर को तोड़ कर मूर्त्ति बनाई जाती है । सत्य तो यह है कि '**दृते**' परमात्मा के लिये प्रयुक्त शब्द है जो अविद्यान्धकार का निवारक है । सब प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखने की शिक्षा देने वाले इस मन्त्र से मूर्त्तिपूजा सिद्ध करना पत्थर से पानी निकालने के तुल्य है । इसी प्रसंग में लेखक ने ऋग्वेद का मन्त्र '**अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवेदिवे । यशसं वीरवत्तमम् ॥**' (१.१.३) पेश किया और अर्थ करते हुए लिखा - जो व्यक्ति ईश्वर द्वारा प्रतिष्ठापित मूर्त्ति की प्रतिदिन पूजा करता है उसे धन, यश तथा पुत्र पौत्रादि प्राप्त होते हैं । प्रथम तो इस अर्थ से यह भाव निकलता है कि ईश्वर स्वयं किसी मूर्त्ति को प्रतिष्ठापित करता है । सत्य तो यह है कि सारी मूर्त्तियां तो मनुष्यों द्वारा स्थापित की जाती हैं । ईश्वर ने किसी प्रतिमा को आज तक स्थापित नहीं किया । मन्त्र का सीधा अर्थ यही है कि अग्नि परमात्मा अपने भक्त को पुष्टिकारक धन (धर्म, मोक्ष विद्या, चक्रवर्ती राज्य, आरोग्य स्वरूप धन) तथा यश (कीर्ति) प्राप्त कराता है । मन्त्र में प्रतिमा पूजन द्वारा धन प्राप्ति का कोई संकेत नहीं है ।

स्वामी नारायण मत के साधु श्री हरिदास का वेद ज्ञान सचमुच लाजवाब है । सच तो यह है कि पत्थर की मूर्त्तियों को

पूजते पूजते इनकी बुद्धि भी पाषाणवत् जड़ हो गई है। तभी तो वे अथर्ववेद (१.१३.१) में आये विद्युत परक मन्त्र में उल्लिखित **'अश्मने'** का अर्थ पत्थर की मूर्त्ति में विराजमान् ईश्वर करते हैं। वस्तुतः मन्त्र में विद्युत विद्या का वर्णन है तथा इसके सहवर्ती **'अश्मा'** अर्थात् मेघों का उल्लेख है। अथवा विद्योतमान (ज्योति स्वरूप – ज्ञान स्वरूप) ईश्वर के लिये नमस्कार का विधान है। निघण्टु में **'अश्मा'** मेघ का नाम बताया है, न कि पत्थर का। लौकिक संस्कृत में अवश्य ही **'अश्मा'** शब्द पत्थर का वाचक है, तथापि मन्त्र में प्रतिमापूजन का कहीं लेश भी नहीं है। यहीं पर लेखक अथर्ववेद का एक अन्य मन्त्र (२.१३.४) उद्धृत करता है - **'एह्यश्मानमा तिष्ठाश्मा भवतु ते तनूः। कृण्वन्तु विश्वे देवा आयुष्टे शरदः शतम्॥'** लेखक ने मन्त्र की पहली पंक्ति तो ले ली और दूसरी को छोड़ दी। वस्तुतः मन्त्र में ब्रह्मचारी को सम्बोधित किया गया है और उसे कहा गया है कि तू पत्थर पर खड़ा हो और पत्थर की ही भांति अपने शरीर को सुदृढ़ बना। तब सभी गुरु **(विश्वे देवा)** तेरी आयु को सौ वर्षों की होती है। यदि साधु श्री हरिदास के कथनानुसार इस मन्त्र का मूर्त्तिपरक अर्थ किया जावे तब तो मन्दिरों की मूर्त्तियों की आयु मात्र १०० वर्ष की रक्खी जानी चाहिए और सौ वर्ष पश्चात् इन मूर्त्तियों को खारिज कर देना चाहिए। वेदविद्या से अनभिज्ञ ऐसे ही मूढ़ों के लिये शास्त्र ने कहा था कि ऐसे लोगों से विद्या को बचाना चाहिए।

सामवेद के एक ब्राह्मण वाक्य की ओर संकेत करता हुआ लेखक

कहता है कि वहां '**देवायतन**' और '**देवप्रतिमा**' शब्द आये हैं। किसी शब्द के आने मात्र से किसी बात की सिद्धि नहीं होती। उक्त सन्दर्भ में आये '**देवायतन**' और '**देवप्रतिमा**' आकाशस्थ ग्रहों आदि के सूचक हैं। पौराणिकों के मान्य भाष्यकार सायण ने भी षड्विंश ब्राह्मण के इस स्थान पर स्वप्नावस्था का वर्णन माना है। अतः इस प्रमाण को भी मूर्त्तिपूजा के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

पाञ्चरात्र आगम प्रमाणभूत नहीं

जब वेदमन्त्रों से मूर्त्तिपूजा की सिद्धि नहीं होती तो अवान्तर अर्वाचीन शास्त्रों के आधार पर इस वेदविरुद्ध प्रथा के औचित्य को सिद्ध करना उचित नहीं है। कारण कि वेदविरुद्ध मान्यताएं हमारे धार्मिक प्रसंगों में अप्रामाणिक घोषित हुई हैं। यह तो सत्य है कि प्रचलित वैष्णव सम्प्रदायों की मान्यताओं का उल्लेख पाञ्चरात्र आगमों में हुआ है, किन्तु ये ग्रन्थ महाभारत के परवर्ती उस युग के हैं जब राम, कृष्ण आदि को अवतार घोषित कर दिया गया था तथा बौद्धों एवं जैनों के अनुकरण पर इनके मन्दिर बनने लग गये थे। स्वामी नारायण मत के प्रवर्त्तक (इन्हें लेखक 'श्री जी महाराज' कहता है) ने सांख्य, योग तथा वेदान्त के वर्ग में यदि पाञ्चरात्र को रक्खा है तो यह उसकी भूल है। सांख्य, योग, वेदान्तादि ऋषिकृत दर्शन हैं जब कि पाञ्चरात्र साम्प्रदायिक अनार्ष ग्रन्थ हैं। ये ग्रन्थ वैष्णवों के लिये तो मान्य हो सकते हैं किन्तु वैदिक साहित्य में उनकी गणना नहीं हो सकती। यहां

लेखक ने पाञ्चरात्र वाङ्मय के किसी 'ईश्वर संहिता' नाम के ग्रन्थ का प्रमाण देकर लिखा है कि ये वैष्णव आगम ग्रन्थ वेदों की प्रख्यात 'एकायन' शाखा से सम्बद्ध हैं। तथ्य यह है कि वेदों की जितनी शाखाएं ज्ञात हैं उनमें 'एकायन' नाम की कोई शाखा नहीं है। छान्दोग्य उपनिषद् के नारद-सनत्कुमार संवाद में आये 'एकायन' शब्द का अर्थ लेखक ने स्व अर्थ की सिद्धि के लिये किया है वह भी त्रुटिपूर्ण है क्योंकि भाष्यकारों ने 'एकायन' का अर्थ नीतिशास्त्र किया है न कि पाञ्चरात्र ग्रन्थ। अतः मूर्त्तिपूजा को वैदिक सिद्ध करना लेखक का स्वच्छाचारी प्रयास ही है। इसे भारत की विश्व को अनुपम भेंट बताना तो और भी हास्यास्पद है। भारत ने विश्व को ज्ञान, विज्ञान, आचार आदि की शिक्षा दी, किन्तु मूर्त्तिपूजा की शिक्षा कदापि नहीं दी। इस प्रकरण के अन्त में लेखक ने बुद्ध के परवर्ती काल में भारत में मूर्त्तिपूजा के जो प्रमाण दिये हैं उसका मूल विषय से कोई सम्बन्ध नहीं, क्योंकि यह तो इतिहास ही प्रमाणित करता है कि मूर्त्तिपूजा का प्रचलन उसी काल में हुआ।

मूर्त्तिपूजा की निरर्थकता

'मूर्त्तिपूजा की आवश्यकता' शीर्षक प्रकरण में लेखक लिखता है कि प्राचीन ऋषियों ने सावधानी के साथ प्रतिमा पूजन की विधि आरम्भ की। उत्तर में हमारा कहना है कि किसी प्राचीन ऋषि मुनि ने मूर्त्तिपूजा का विधान नहीं किया। मन्त्रद्रष्टा

ऋषियों, उपनिषद् प्रणेता कठ, श्वेताश्वतर, ऐतरेय आदि ऋषियों, कपिल, कणाद, गोतम, बादरायण, पतंजलि, जैमिनि आदि दर्शन प्रणेता ऋषियों तथा वाल्मीकि एवं व्यास जैसे रामायण एवं महाभारत रचयिता ऋषियों ने कहीं भी मूर्त्तिपूजा का विधान नहीं किया । आगे वह लिखता है, "अनेक भक्तों ने परमात्मा का साक्षात्कार मूर्त्ति द्वारा किया है, परमात्मा को प्रत्यक्ष देखा है आदि ।" उत्तर में कहा जा सकता है कि मूर्त्ति द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार होना ही शक्य नहीं है । उसे तो हृदय-मन्दिर में ध्यानावस्थित होकर ही देखा जाता है और यही बात वैदिक उपासना में स्वीकार की गई है । परमात्मा भौतिक या चाक्षुष प्रत्यक्ष का विषय ही नहीं है । वह तो अनुभूति का ही विषय है और यह अनुभूति साधना की सर्वोच्च भूमि - समाधि में ही होती है ।

एक अन्य युक्ति देता हुआ लेखक कहता है कि यदि परमात्मा सर्वव्यापक है तो वह साकार - मूर्त्तिमान भी है । इन दोनों स्वरूपों का उल्लेख श्रुति स्मृतियों में है । उत्तर में यह कहना उचित है कि सर्वव्यापकता का अर्थ साकार या मूर्त्तिपूजा होना हरगिज नहीं होता । जो साकार या मूर्त्तिमान है वह तो निश्चय ही एकदेशीय है । किसी भी श्रुति (वेद) अथवा स्मृति (मन्वादि) में परमात्मा को साकार अथवा मूर्त्तिमान नहीं कहा गया । हम मूर्त्ति में परमात्मा के अस्तित्व को नहीं नकारते, अपितु उसकी पूजा (षोडशोपचार पूजन) से परमात्मा की प्राप्ति नहीं मानते ।

स्वामी नारायण से संस्थापक परमात्मा को अक्षरधाम का निवासी बताते हैं। हमारा पूछना है कि क्या यह अक्षरधाम कोई स्थान विशेष है ? वह यदि एक देश विशेष है तो परमात्मा को सर्वदेशी कैसे कहा जायगा ? यहां लेखक का एक विचित्र तर्क है कि यदि वेदप्रतिपादित ईश्वर इन्द्रियातीत, अनिर्वचनीय तथा अगोचर है तो उसे अपनी स्थूल-मायिक इन्द्रिय और बुद्धि वाला साधारण जीव कैसे जान सकता है। हमारा उत्तर तो स्पष्ट है कि परमात्मा इन्द्रिय गम्य नहीं है किन्तु वह सूक्ष्म तथा चैतन्य आत्मा द्वारा चीन्हा जा सकता है। यह कहना तो वाक्छल मात्र है कि मनुष्य यदि मनुष्याकार भगवान् को देखे तो उसमें उसकी सहज प्रीति होगी। अरे भोले भाई, मनुष्याकृति के स्त्री पुरुषों में तो हम मनुष्यों की प्रीति होती ही है। क्या परमात्मा भी वैसा ही शरीरधारी है जिससे तुम पुत्र, स्त्री आदि की भांति प्रेम कर सको ?

लेखक का एक अन्य तर्क यह है कि यदि आप परमात्मा को साकार नहीं मानेंगे तो आप के अन्तःकरण में उसके प्रति भक्ति का उदय नहीं होगा। यह कथन भी मिथ्या है क्योंकि निराकार परमेश्वर के सैंकड़ौं भक्तों ने अपने अन्तस में परमात्मा की भक्ति और प्रीति को जगाया था । नानक, कबीर, दादू, रैदास, सुन्दरदास, राममोहनराय, दयानन्द आदि भक्तजन निराकार के ही भक्त थे। वे साकारवाद को नकार चुके थे। शंकराचार्य अपने पौराणिक संस्कारों से प्रभावित होने के कारण एक ओर यदि

निर्विशेष, निराकार, अद्वैत ब्रह्म की अनिर्वचनीय सत्ता का प्रतिपादन करते हैं तो दूसरी ओर ब्रह्म को सर्वगत मानते हुए भी शालिग्राम शीला में उसे स्थान विशेष निवासी भी कहते हैं। यह शंकर के कथन में वदतोव्याघात दोष उपस्थित करता है। साधु श्री हरिदास ने छान्दोग्य उपनिषद् में आये '**हिरण्यमयः पुरुषः**' को साकार माना यह उनकी भूल है। यह सारा वर्णन उसी प्रकार आलंकारिक है जिस प्रकार यजुर्वेद (अध्याय ३१) में विराट् पुरुष के हाथ, पांव, नेत्र आदि की कल्पना की गई है अथवा गीता के विश्वरूप दर्शन प्रसंग में परमात्मा को अनन्त वीर्य, अनन्त बाहु तथा शशि-सूर्य नेत्र वाला कहा है। रामानुजाचार्य को मूर्त्तिपूजा के समर्थन में उद्धृत करना वैसा ही है जैसा चोर को किसी वस्तु की रखवाली का काम सौंपना। रामानुज के काल तक तो पौराणिक धर्म भारत में बद्धमूल हो चुका था तथा रामानुज, मध्व, निम्बार्क एवं वल्लभ आदि वैष्णव भक्तों ने ही मूर्त्तिपूजा के घटाटोपपूर्ण आडम्बर को विस्तार दिया था।

ईश्वर निराकार है

अब लेखक स्वमत के संस्थापक सहजानन्द ('स्वामी नारायण') की युक्ति देता है। उसके अनुसार सर्व वस्तु साकार हैं। कोई वस्तु निराकार नहीं, पुनः ब्रह्म कैसे निराकार हो सकता है ? स्वामी नारायण का यह कथन हेतु नहीं, हेत्वाभास है। संसार में साकार तथा निराकार दोनों प्रकार के पदार्थ सदा से विद्यमान हैं। तीन

स्थूल भूत (पृथ्वी, जल, अग्नि) यदि साकार हैं तो उनकी अपेक्षा आकाश और वायु निराकार हैं। जीवात्मा अणु होने से दृष्टिगोचर नहीं, वह भी निराकार है । इसी प्रकार परात्पर ब्रह्म भी निराकार है । किन्तु स्वामी नारायण तो एक नास्तिक मत है । इसका प्रवर्त्तक सहजानन्द अयोध्या का एक मरणधर्मा मनुष्य होकर भी स्वयं को परमात्मा कहता है । साधु श्री हरिदास ने यहां लिखा – "श्रीजीमहाराज (सहजानन्द) ने परमात्मा को सदा साकार ही कहा है क्योंकि वे स्वयं परमात्मा थे ।" एक अल्पज्ञ जीव अपने को सर्वज्ञ परमात्मा कहे, इससे बढ़कर धृष्टता, अविनय तथा नास्तिकता और क्या हो सकती है ? लेखक का यह कथन प्रमाणहीन है कि शास्त्रों ने परमात्मा को साकार तथा निराकार दोनों प्रकार का बताया है । अर्वाचीन पौराणिक धर्म को छोड़कर किसी प्राचीन श्रुति, स्मृति आदि शास्त्रों में परमेश्वर को साकार नहीं कहा गया ।

साधु श्री हरिदास के कुछ विचित्र हेत्वाभास

१. मूर्त्तिपूजा से मनुष्य की चित्त शुद्धि होती है ।

यह सर्वथा अनर्गल प्रलाप है । शास्त्रों में चित्त शुद्धि के लिये शम, दम, तप, तितिक्षा, श्रवण, मनन, निदिध्यासन, अष्टांग योग आदि के साधन बताये हैं । मूर्त्तिपूजा से चित्त में बाह्य वृत्तियों का भले ही संचार हो वह चित्त वृत्ति निरोध का साधन कदापि नहीं ।

२. *ईशोपनिषद् कथित '**तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः ।**' का अर्थ है पुष्पादि सुगंधित द्रव्यों को प्रथम भगवान् की मूर्त्ति के आगे निवेदन कर उनका भोग किया जाये ।*

यह अर्थ का अनर्थ है । किसी भी उपनिषद् भाष्यकार ने उक्त मन्त्रांश का ऐसा विचित्र अर्थ नहीं किया । मन्त्र का अभिप्राय तो इतना ही है कि हम संसार की वस्तुओं को निरासक्त होकर भोगें । उसमें मूर्त्ति के आगे पुष्पादि अर्पित करने की गन्ध भी नहीं है ।

३. *वाणी से भगवान् का गुणगान करो, हाथों से उनकी सेवा करो ।*

वाणी से तो भगवान् का गुणानुवाद किया जा सकता है किन्तु यह भी सीमित ही होगा । '**यतो वाचो निवर्तन्ते**' के अनुसार परमात्मा तक जाते जाते तो वाणी भी विराम ले लेती है । हाथों से तो माता-पिता आदि स्थूल देहधारियों की ही सेवा हो सकती है । '**पूर्णस्यावाहनं कुत्र सर्वाधारस्य चासनम् । स्वच्छस्य पाद्यमर्ध्यं च शुद्धस्याचमनं कुतः ॥**' कह कर स्वयं शंकराचार्य ने ही परिपूर्ण परमात्मा का आवाहन करना, उसे आसन देना, उसे पादोदक और अर्घ्य देना तथा आचमन हेतु जल देने का निषेध किया है । स्थूल इन्द्रियों तथा जल, नैवेद्य आदि स्थूल पदार्थों से परमात्मा की सेवा नहीं होती ।

४. *योग दर्शन का सूत्र '**यथाभिमतध्यानाद्वा**' (समाधि पाद ३९) मूर्त्तिपूजा की आज्ञा देता है।*

योग के सूत्र का यह अर्थ करना अनर्थ है । इसका अभिप्राय इतना ही है कि योग शास्त्र में तथा वेद तथा वेदानुकूल सत्य शास्त्रों में मनोनिग्रह के जिन उपायों का उल्लेख किया गया है उन्हीं में से जो उपाय साधक को सर्वाधिक अनुकूल लगता है उसका प्रयोग करने से मन एकाग्र अथवा स्थिर होता है । जब चित्त में एकाग्रता की योग्यता प्राप्त हो जावे तो उसको जहां चाहे लगा सकता है । योग शास्त्र में मूर्त्ति अथवा मूर्त्तिपूजा का कोई उल्लेख नहीं ।

मूर्त्ति जड़ पदार्थ है

परमात्मा द्वारा रचित सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र जैसे दिव्य पदार्थों को देख कर उस सृष्टि रचयिता के रचना कौशल का हमें ज्ञान होता है । पुनः मनुष्य द्वारा रचित पत्थर, लकड़ी, धातु आदि की प्रतिमाओं को देख कर हम उसकी दिव्य रचना चातुरी का अनुमान कैसे लगा सकते हैं । उससे तो हमें मूर्त्तिकार की कला का ही पता चलता है । साधु श्री हरिदास का यह कथन तो अत्यन्त उपहासास्पद है, जब वह कहता है कि मूर्त्ति भगवान् का साक्षात् स्वरूप है । यदि वास्तव में ऐसा है तो मूर्त्ति सच्चिदानन्दादि लक्षणों से युक्त क्यों नहीं है ? वह तो नश्वर है, पत्थरों से निर्मित

होने के कारण अनेक बार मूर्त्तिभंजकों ने उसे तोड़ा है, उसमें चेतना का अभाव है तभी तो चोरों द्वारा चुराये जाने से वह अपना बचाव नहीं कर सकती । आनन्द जैसे लक्षण की उसमें कल्पना ही निरर्थक है ।

स्वामी नारायण सम्प्रदाय की विचित्र कल्पना

आगे चल कर यह लेखक अपने स्वामी नारायण सम्प्रदाय में मूर्त्तिपूजा के विधान की चर्चा करता है । यद्यपि इससे हमारा विशेष प्रयोजन नहीं है तथापि पाठकों को यह बताया जाना आवश्यक है कि इस मत की विचारधारा वेदादि शास्त्रों से कितनी प्रतिकूल है । कहने को तो सहजानन्द ने अपने ग्रन्थ 'शिक्षापत्री' (श्लोक १२१) में यह स्वीकार किया है कि मेरा मत विशिष्टद्वैत दर्शन के अनुकूल है, किन्तु वास्तव में वह उससे प्रतिकूल ही है । कारण कि जहां रामानुज ने अवतार सिद्धान्त को मान्यता देकर विष्णु को परिपूर्ण परमात्मा माना और उनकी पूजा अर्चा का विधान किया, वहां स्वामी नारायण मत में इसके संस्थापक सहजानन्द ने स्वयं को ही परमात्मा घोषित कर दिया । जैसा कि इस लेखक ने लिखा है, "भगवान् स्वामी नारायण के मत के अनुसार भगवान् सब नियमों के बन्धन से परे हैं । इसलिए अक्षरपति (?) भगवान् पुरुषोतम जब खुद संकल्प करते हैं तो स्वधाम में रहते हुवे ही अन्य स्वरूप में (अर्थात् सहजानन्द की देह में) पृथ्वी पर भी दिखाई पड़ते हैं । धाम की

मूर्त्ति पृथ्वी पर मनुष्य रूप में प्रकट होती है । परन्तु धाम की मूर्त्ति तथा मनुष्य रूप में नयनगोचर मूर्त्ति ये दोनों एक ही है ।" इस कथन में दो त्रुटियां हैं । प्रथम तो परमात्मा को सर्व बन्धनों (नियमों) से परे बताना । यह तो सत्य है कि ईश्वर मनुष्य की भांति सांसारिक बन्धनों के परे है, किन्तु ऋत और सत्य का आधार होने से वह स्वयं अपने ही नियमों का पालक भी है । द्वितीय बात यह है कि अक्षरधाम में निवास करनेवाले किसी पुरुषोत्तम को ईश्वर कहना तथा उसे ही पृथ्वी पर सहजानन्द (स्वामी नारायण) के रूप में अवतरित बताना, इस सम्प्रदाय की निराली कल्पना है । इससे पाठकों पर यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि यह मत रामानुजीय सिद्धान्त का नाम भले ही ले, उससे सर्वथा भिन्न ही है ।

स्वयम्भू प्रतिमाओं का पाखण्ड

लेखक ने देवमूर्त्तियों का त्रिविध वर्गीकरण किया है । कुछ प्रतिमाओं को वह स्वयम्भू प्रतिमा कहता है । उसके अनुसार ये मूर्त्तियां किसी के द्वारा निर्मित नहीं हैं । ये स्वयं अपने को प्रकट करने के लिये भक्तों को प्रेरणा देती हैं । तब भक्त सांकेतिक स्थल पर जाकर उन्हें प्राप्त करता है और स्वप्न में प्राप्त भगवदीय प्रेरणा के अनुसार मन्दिर बना कर उस मूर्त्ति को वहां प्रतिष्ठित करता है । तथ्य यह है कि जड़ मूर्त्ति स्वयम्भू नहीं हो सकती है । यदि वह निर्मिति है, कृति है तो उसका निर्माता अवश्य रहा होगा ।

ऐसी जमीन में गढ़ी प्रतिमाओं की पोल स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश (११वां समुल्लास) में भली प्रकार प्रकट कर दी है । उनके अनुसार ऐसे पाखण्डी भक्त या पुजारी स्वयं किसी मूर्त्ति को जंगल में जाकर गाड़ देते हैं और तब किसी धनाढ्य व्यक्ति या राजा को यह कल्पित कहानी सुनाते हैं कि भगवान् ने स्वप्न में उसे इस गड़ी प्रतिमा की सूचना दी है । तब वह धनी उस प्रतिमा को निकालता है और उस पाखण्डी पुजारी के कहने में आकर मूर्त्ति के लिये मन्दिर बनवाता है, साथ ही उसी व्यक्ति को पुजारी बना कर उसकी जीविका का प्रबन्ध भी कर देता है । धरती से प्राप्त ऐसी अनेक मूर्त्तियां उस युग में भूमिस्थ कर दी गई थीं जब मूर्त्तिभंजक मुसलमान शासकों ने इस देश में मन्दिरों को तोड़ना तथा प्रतिमाओं को ध्वस्त करना आरम्भ कर दिया था । अब वे ही मूर्त्तियां यदा-कदा जमीन से निकलती हैं या निकाली जाती हैं ।

मूर्त्तियों सम्बन्धी चमत्कारों का मिथ्यात्व

मूर्त्तियों को लेकर जितने चमत्कार हमारे देश में प्रचलित हैं, उन सबसे रहस्यों का उद्घाटन तो स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में किया ही है । लेखक भी नरसिंह मेहता को दामोदर की प्रतिमा द्वारा हार पहनाना, मीरा द्वारा किया गया हलाहल विष का पान और सभी के देखते हुए रणछोडराय द्वारा उसको (मीरा को) अपने में समा लेना, चैतन्य का जगन्नाथ की

मूर्त्ति में विलीन होना आदि चमत्कारों का उल्लेख करता है। यह मात्र दृष्टिदोष या भ्रान्ति से ही उत्पन्न होता है । कारण कि सृष्टिक्रम और विज्ञान के विरुद्ध किसी घटना का होना असम्भव ही है। पौराणिक ग्रन्थों में निर्दिष्ट मूर्त्ति विषयक चमत्कारों में भी सत्यता नहीं है। ध्रुव को नारद द्वारा मूर्त्तिपूजा का उपदेश, एकलव्य द्वारा द्रोणाचार्य की मूर्त्ति से धनुर्विद्या सीखना, राम द्वारा रामेश्वर नामक शिवलिंग की स्थापना आदि कथानकों में सत्य का लेश मात्र भी नहीं है । एकलव्य को धनुर्विद्या में प्रवीणता अभ्यास से मिली, न कि द्रोण की मिट्टी की मूर्त्ति ने उसे इस विद्या में निपुणता दिलाई। राम ने किसी शिवलिंग की न तो समुद्र तट पर स्थापना की और न ही उसकी पूजा की । वाल्मीकि रामायण में तो स्पष्ट लिखा है कि समुद्र तट पर आकर राम ने 'विभु' (सर्वव्यापक) परमात्मा की उपासना की और उसकी कृपा प्राप्त की - **'अत्र पूर्वं महादेव प्रसादमकरोत् विभुः ।'** (युद्धकाण्ड : १२५.२०) आदि वाल्मीकि से श्लोक इसी तथ्य का संकेत देते हैं।

यहीं पर लेखक ने स्वामी नारायण (सहजानन्द) द्वारा मूर्त्ति की स्थापना करने तथा उसे दिये गये दूध के पी जाने आदि के जो चमत्कार लिखे हैं, उनके मिथ्यात्व में किसी को शंका नहीं होनी चाहिए । प्रतिमा द्वारा अन्नकूट का भोजन खाना आदि बातों को इस बुद्धिप्रधान युग में कौन सच स्वीकार करेगा ?

योगदर्शन तथा गीता में मूर्त्तिपूजा नहीं

साधु श्री हरिदास ने गीता तथा योगदर्शन में बताये गये उपासना के साधनों को भी मूर्त्तिपूजा से जोड़ने का मिथ्या प्रयास किया है। गीता के '**समं कायशिरोग्रीवं**' आदि निर्देश योगदर्शन में प्रतिपादित साधना पद्धति में प्रयोग किये जाते हैं। उनका मूर्त्तिपूजा से कोई लेना देना नहीं है। गीता में कहा गया अभ्यास और वैराग्य का उपदेश मन के निग्रह के लिये है। लेखक ने इस अभ्यास और वैराग्य को प्रतिमा के दर्शन करने तथा उसे हृदय में स्थापित कर (जड़ प्रतिमा को हृदय में कैसे स्थापित लिया जा सकता है ?) उसका चिन्तन करने से जोड़ा है जो गीता के वक्ता के अभिप्राय से नितान्त प्रतिकूल है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि स्वामी नारायण मत भी अन्य साकारवादी वैष्णव सम्प्रदायों से कथमपि भिन्न नहीं है। इतना अवश्य है कि उसका संस्थापक स्वयं के परमात्मा होने की घोषणा करता है जो नितान्त अलीक तथा कपोल कल्पित है।

पाद-टिप्पणियां :

१. स्वामी दयानन्द रचित यह लघु ग्रन्थ सर्व प्रथम १८७६ ई० में मुम्बई से प्रकाशित हुआ था जिसमें स्वामी जी लिखित मूल संस्कृत के साथ-साथ इसका पण्डित श्यामजी कृष्ण वर्मा (महान् क्रान्तिकारी देशभक्त) कृत गुजराती अनुवाद भी प्रकाशित हुआ था।

२. इसका चतुर्थ गुजराती संस्करण जुलाई २००६ में इसी प्रकाशन संस्था द्वारा प्रकाशित हुआ है।

३. यह दु:खद दुर्योग रहा कि डॉ० वेदपाल जी सुनीथ दि० ६ फरवरी १९९७ को जोधपुर (राजस्थान) में आयोजित अखिल भारतीय शतपथ-ब्राह्मण संगोष्ठी में अध्यक्षीय प्रवचन करते हुए अकस्मात् निधन हो गया। उन्होंने **'शतपथ के दस पथ'** तथा **'शतपथ सुभाषित'** आदि ग्रन्थ लिखे हैं।

४. **'महावीरः = यज्ञसाधनं मृन्मयपात्रभेदे तन्निर्माणविधिः'** (वाचस्पत्य कोष : २०.४७.४४)। ग्रिफिथ ने ऋग्वेद की टीका में पृष्ठ ४९२ पर लिखा है - 'Heated for pravargya in which fresh milk was poured into a heated vessel called Mahavir or as in this place Gharma.' शतपथ-ब्राह्मण में पृथिवी, द्यौ आदि आठ वसु; प्राण, अपान, जीवात्मा आदि ग्यारह रुद्र; संवत्सर के बारह महीने; विद्युत् तथा यज्ञ आदि की संज्ञा 'देव' है। **'देवो दानाद्वा, दीपनाद्वा, द्योतनाद्वा, द्युस्थानो भवतीति वा'** यह निरुक्त (७.१५) का प्रमाण है।

०००